International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 14 Issue 5, September-October, 2026

समकालीन कविताओं में वर्णित नई चुनौतियाँ: एक अध्ययन

डॉ. दीपिका गेंवा

(हिंदी साहित्य), राजकीय महाविद्यालय गोटन, नागौर

DOI: https://doi.org/10.55948/IJERED.2026.0936

सारांश

समकालीन हिन्दी कविता ने बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से अब तक के सामाजिक-राजनीतिक रूपान्तरण को अपनी संवेदना में दर्ज किया है। प्रस्तुत शोध-आलेख प्रतिनिधि कवियों के संग्रहों के आधार पर उन नयी चुनौतियों का अध्ययन करता है जिनकी ओर यह कविता संकेत करती है: बाज़ार और उपभोक्तावाद का दबाव; सत्ता, साम्प्रदायिकता और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का प्रश्न; विस्थापन और पर्यावरण-क्षरण; स्त्री तथा आदिवासी जैसे हाशिये के स्वर; और तकनीक-जनित अकेलापन। निष्कर्ष है कि समकालीन कविता इन चुनौतियों को नारे के बजाय अनुभव, स्मृति और शिल्प के माध्यम से व्यक्त करती है, और कविता की अपनी सार्वजनिकता भी उसके लिए एक चुनौती है।

बीज शब्द: समकालीन हिन्दी कविता, नयी चुनौतियाँ, बाज़ारवाद, विस्थापन, स्त्री-स्वर, आदिवासी कविता, प्रतिरोध

प्रस्तावना

कविता किसी समय की सबसे संवेदनशील प्रतिक्रिया होती है; वह घटनाओं का ब्योरा कम और उनसे बनती मानवीय स्थिति का साक्ष्य अधिक देती है। हिन्दी आलोचना में 'समकालीन' शब्द का प्रयोग अलग-अलग अर्थों में हुआ है: कहीं वह साठ के दशक के बाद की कविता का संकेत है, तो कहीं 1991 के आर्थिक उदारीकरण के बाद की कविता का। इस आलेख में उससे आशय मुख्यतः साठ के दशक के बाद की, और विशेषतः 1990 के बाद की हिन्दी कविता से है, क्योंकि बाज़ार के विस्तार, साम्प्रदायिक तनाव, विस्थापन और तकनीकी परिवर्तन जैसे प्रश्न इसी दौर में अधिक तीव्र हुए।

शोध-प्रश्न तीन हैं: समकालीन कविता किन नयी चुनौतियों को विषय बनाती है; उनकी अभिव्यक्ति के लिए कौन-से शिल्प और भाषा-रूप अपनाये गये हैं; और इस सन्दर्भ में कविता की भूमिका तथा स्वयं उसके सामने की चुनौतियाँ क्या हैं। अध्ययन विषयगत-विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। प्राथमिक सामग्री के रूप में रघुवीर सहाय, कुँवर नारायण, केदारनाथ सिंह, अरुण कमल, मंगलेश डबराल, वीरेन डंगवाल, अनामिका, निर्मला पुतुल और जसिंता केरकेट्टा जैसे कवियों के संग्रह लिये गये हैं; द्वितीयक आधार नामवर सिंह की आलोचना है। कविताओं को उद्धृत करने के स्थान पर उनके कथ्य और दृष्टि का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन प्रतिनिधि कवियों तक सीमित है और सभी काव्य-प्रवृत्तियों का सर्वेक्षण नहीं करता।

पृष्ठभूमि: मोहभंग से उदारीकरण तक

आधुनिक हिन्दी कविता में प्रयोगवाद का आरम्भ-चिह्न 'तार सप्तक' (1943) है। गजानन माधव मुक्तिबोध (1917–1964) का 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' (1964) बौद्धिक की नैतिक बेचैनी और सत्ता से उसके रिश्ते का प्रश्न उठाता है, इसलिए उन्हें प्रगतिवाद और नयी कविता के बीच की कड़ी माना जाता है। नामवर सिंह ने 'कविता के नये प्रतिमान' (1968) में कविता के मूल्यांकन के लिए नयी आलोचनात्मक कसौटियों की माँग रखी। साठ के बाद की कविता ने स्वतन्त्रता-पश्चात् मोहभंग को स्वर दिया: धूमिल (1936–1975) का 'संसद से सड़क तक' (1972) संसदीय लोकतन्त्र और आम आदमी की दूरी पर क्रोध की भाषा में टिप्पणी करता है; सर्वेश्वरदयाल सक्सेना (1927–1983) के 'खूँटियों पर टँगे लोग' को 1983 में और रघुवीर सहाय (1929–1990) के 'लोग भूल गये हैं' (1982) को 1984 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला।

आपातकाल (1975–77) ने भय, निगरानी और चुप्पी की राजनीति को कविता का विषय बनाया। सत्ता, भय और साधारण जन की असहायता के ये प्रश्न 1990 के बाद नये रूपों में लौटे, जब 1991 के आर्थिक उदारीकरण ने बाज़ार को सामाजिक जीवन का निर्णायक तत्त्व बना दिया। इस आलेख में विश्लेषित चुनौतियों और प्रतिनिधि कवियों का सार तालिका 1 में दिया गया है।

तालिका 1: समकालीन हिन्दी कविता में नयी चुनौतियाँ और प्रतिनिधि कवि

चुनौती	प्रतिनिधि कवि और कृतियाँ	काव्य-दृष्टि की प्रवृत्ति
बाज़ार और उपभोक्तावाद	अरुण कमल (‘नये इलाके में’); मंगलेश डबराल (‘हम जो देखते हैं’)	स्मृति-क्षरण की बेचैनी; पलायन और उपभोक्ता-दबाव
सत्ता, साम्प्रदायिकता और अभिव्यक्ति	रघुवीर सहाय (‘लोग भूल गये हैं’); कुँवर नारायण (‘अयोध्या, 1992’); वीरेन डंगवाल (‘दुश्चक्र में स्रष्टा’)	सत्ता की भाषा का छल; उन्माद के विरुद्ध नैतिक प्रश्न; व्यंग्य और करुणा
विस्थापन, पर्यावरण और हाशिया	केदारनाथ सिंह (‘अकाल में सारस’); निर्मला पुतुल; जसिंता केरकेट्टा	प्रकृति से छूटता रिश्ता; आदिवासी अस्मिता और प्रतिरोध
स्त्री-अस्मिता	अनामिका (‘टोकरी में दिगन्त: थेरीगाथा’); निर्मला पुतुल (‘अपने घर की तलाश में’)	परम्परा से संवाद; ‘अपने घर’ और अस्मिता की खोज
तकनीक, अकेलापन और सार्वजनिकता	विनोद कुमार शुक्ल (‘सब कुछ होना बचा रहेगा’); डिजिटल मंच	आत्मीयता की खोज; लोकप्रियता बनाम गम्भीरता

स्रोत: शोधकर्ता द्वारा संकलित।

बाज़ार, उपभोक्तावाद और भूमण्डलीकरण

उदारीकरण के बाद बाज़ार केवल अर्थ-व्यवस्था का नहीं, रोज़मर्रा की संवेदना और भाषा का भी निर्णायक तत्त्व बन गया। कविता के सामने इसकी दोहरी चुनौती है: एक, मनुष्य के उपभोक्ता में बदलते जाने की प्रक्रिया को पहचानना; और दो, स्वयं को पण्य-वस्तु बनने से बचाये रखना। अरुण कमल (जन्म 1954) के ‘नये इलाके में’ (साहित्य अकादमी पुरस्कार 1998) की शीर्षक कविता बदलते शहर में परिचित निशानों के मिट जाने की बेचैनी दर्ज करती है; यह निजी भटकाव सामूहिक स्मृति के क्षरण का रूपक बन जाता है। मंगलेश डबराल (1948–2020) की कविता में, ‘पहाड़ पर लालटेन’ से ‘हम जो देखते हैं’ (साहित्य अकादमी पुरस्कार 2000) तक, पहाड़ की स्मृति और शहरी उपभोक्ता-जीवन के तनाव को प्रायः एक साथ देखा जा सकता है।

बाज़ार की चुनौती कविता के अपने अस्तित्व से भी जुड़ी है। प्रकाशन, पुरस्कार और मंच की अर्थ-व्यवस्था तथा तात्कालिक लोकप्रियता की माँग कविता को हल्का और मनोरंजक बनाने का दबाव डालती है। इसलिए कई कवि भाषा की किफ़ायत, संकेत और अनुभव की प्रामाणिकता पर बल देते प्रतीत होते हैं; यह बाज़ार की वाचालता के विरुद्ध कविता की अपनी रणनीति है।

सत्ता, साम्प्रदायिकता और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता

दूसरी बड़ी चुनौती सत्ता के केन्द्रीकरण, साम्प्रदायिक विभाजन और अभिव्यक्ति पर दबाव की है। रघुवीर सहाय की कविता का केन्द्रीय सरोकार लोकतन्त्र में साधारण नागरिक की आवाज़ और सत्ता की भाषा के छल को पहचानना था; इस सरोकार की अनुगूँज बाद के कवियों में सुनी जा सकती है। साम्प्रदायिकता के प्रश्न पर कुँवर नारायण (1927–2017; ज्ञानपीठ पुरस्कार 2005) की कविता ‘अयोध्या, 1992’ बाबरी मस्जिद के ध्वंस (6 दिसम्बर 1992) के बाद राम को सम्बोधित करते हुए अयोध्या के उन्माद के हवाले हो जाने की पीड़ा व्यक्त करती है; यहाँ मिथक का प्रयोग आक्रामक राजनीति के विरुद्ध नैतिक प्रश्न के रूप में हुआ है। वीरेन डंगवाल (1947–2015) की कविता में बोलचाल, व्यंग्य और करुणा के मेल से साधारण जीवन के भीतर राजनीतिक यथार्थ दिखाने की प्रवृत्ति ‘दुश्चक्र में स्रष्टा’ (साहित्य अकादमी पुरस्कार 2004) में मिलती है।

अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का प्रश्न केवल कविता में नहीं, लेखकों के सार्वजनिक आचरण में भी सामने आया। कन्नड़ विद्वान एम. एम. कलबुर्गी की हत्या (30 अगस्त 2015) के बाद सितम्बर–अक्टूबर 2015 में हिन्दी के उदय प्रकाश सहित अनेक भाषाओं के चालीस से अधिक साहित्यकारों ने साहित्य अकादमी पुरस्कार लौटाये; इस कदम के औचित्य पर समर्थन और असहमति, दोनों व्यक्त हुईं। इस घटना का साहित्यिक महत्त्व यह है कि उसने लेखक की जवाबदेही और राज्य-संस्थाओं से उसके रिश्ते के प्रश्न को फिर केन्द्र में ला दिया।

विस्थापन, पर्यावरण और हाशिये की आवाज़ें

तीसरी चुनौती मनुष्य और प्रकृति के बदलते रिश्ते तथा विस्थापन की है। केदारनाथ सिंह (1934–2018; साहित्य अकादमी पुरस्कार 1989, ज्ञानपीठ पुरस्कार 2013) की ‘अकाल में सारस’ और उनकी अन्य कविताएँ लोक-स्मृति और बिम्बों के सहारे मनुष्य, पशु-पक्षी और ज़मीन के रिश्ते को सहेजती हैं; ये कविताएँ तेज़ बदलाव के बीच छूटते जा रहे इस रिश्ते की याद दिलाती हैं।

आदिवासी कविता में यह प्रश्न अस्तित्व का प्रश्न बन जाता है। संताली कवयित्री निर्मला पुतुल (जन्म 1972, दुमका) के संग्रहों ‘नगाड़े की तरह बजते शब्द’ और ‘ अपने घर की तलाश में’ में आदिवासी समाज की भीतरी विसंगतियों के साथ बाहरी शोषण, यानी सौदागरों, बिचौलियों और बाज़ार द्वारा संसाधनों और लोगों के दोहन, तथा जंगल और लोक-परम्पराओं के क्षरण का चित्र मिलता है; स्त्री के लिए ‘अपने घर’ की खोज यहाँ अस्मिता की खोज भी है। उराँव समुदाय की कवयित्री जसिंता केरकेट्टा (जन्म 1983, पश्चिमी सिंहभूम) की कविता आदिवासी अस्मिता, विस्थापन, स्त्री के विरुद्ध हिंसा और शासन की उदासीनता के प्रश्न उठाती है; उनके संग्रह ‘ईश्वर और बाज़ार’ (राजकमल प्रकाशन, 2022) का शीर्षक आस्था और बाज़ार के सम्बन्ध की ओर संकेत करता है।

विस्थापन का सबसे तीखा सार्वजनिक दृश्य 2020 में कोविड-19 के लॉकडाउन के बाद लाखों प्रवासी मज़दूरों के पैदल पलायन के रूप में दिखा। इस त्रासदी ने श्रम, राज्य और नागरिकता के रिश्ते का प्रश्न नये सिरे से उठाया और हिन्दी कविता में भी इस पर अनेक रचनाएँ लिखी गयीं।

स्त्री-अस्मिता और घर-बाहर के प्रश्न

समकालीन कविता में स्त्री-स्वर अब केवल विषय नहीं, रचना का केन्द्र है। अनामिका (जन्म 1961, मुज़फ़्फ़रपुर) के 'टोकरी में दिगन्त: थेरीगाथा' (2014) को 2020 का साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला, और वे हिन्दी कविता के लिए यह पुरस्कार पाने वाली पहली महिला मानी जाती हैं। यह संग्रह प्रारम्भिक बौद्ध भिक्षुणियों की 'थेरीगाथा' की परम्परा से संवाद करते हुए स्त्री-अनुभव को नयी भाषा देता है। निर्मला पुतुल की कविता में स्त्री द्वारा 'अपना घर' खोजना पितृसत्तात्मक संरचना और समाज की भीतरी विसंगतियों, दोनों पर प्रश्न है। इन कविताओं में स्त्री पीड़ित के रूप में ही नहीं, अपने अनुभव की व्याख्याकार के रूप में भी उपस्थित है।

तकनीक, अकेलापन और कविता की सार्वजनिकता

चौथी चुनौती तकनीक-जनित अकेलेपन और संवेदना के क्षरण की है। विनोद कुमार शुक्ल (जन्म 1937; ज्ञानपीठ पुरस्कार, घोषणा मार्च 2025) की कविता साधारण जीवन के ब्योरों और आत्मीयता की ऊष्मा के सहारे तेज़ रफ़्तार, शोर-भरे समय का प्रतिपक्ष रचती है; 'सब कुछ होना बचा रहेगा' (1992) का शीर्षक भी बचे रहने की आश्वस्ति का संकेत देता है। दूसरी ओर, ब्लॉग, सोशल मीडिया तथा 'कविता कोश' और 'हिन्दवी' जैसे डिजिटल मंचों ने कविता को नये पाठक और नये कवि दिये हैं, पर इससे तात्कालिक लोकप्रियता और गम्भीर काव्य-कर्म के बीच तनाव भी बढ़ा है। पाठक-वर्ग का संकुचन, पुस्तक-बाज़ार की सीमाएँ और मंच की मनोरंजन-प्रवृत्ति कविता की सार्वजनिकता को स्वयं एक चुनौती बना देती हैं।

अभिव्यक्ति के शिल्प

इन चुनौतियों की अभिव्यक्ति में शिल्प के कई रूप दिखते हैं। पहला, बोलचाल और संयम: रघुवीर सहाय की कविता में समाचार की सहज भाषा को काव्य-अनुभव में बदलने की प्रवृत्ति मिलती है। दूसरा, मिथक और आख्यान की पुनर्रचना: कुँवर नारायण का 'वाजश्रवा के बहाने' (2008) कठोपनिषद् के नचिकेता-प्रसंग के सहारे दो पीढ़ियों के संवाद और जीवन-दृष्टि का प्रश्न उठाता है, और अनामिका थेरीगाथा की परम्परा से संवाद करती हैं। तीसरा, लोक-स्मृति और बिम्ब: केदारनाथ सिंह और निर्मला पुतुल की कविता में लोक-जीवन के बिम्ब सामूहिक अनुभव को स्वर देते हैं; 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' का शीर्षक लोक-वाद्य के बिम्ब से कविता की सामूहिक आवाज़ का संकेत देता है। चौथा, व्यंग्य और करुणा का मेल, जो वीरेन डंगवाल जैसे कवियों में दिखता है।

निष्कर्ष

अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं। पहला, समकालीन हिन्दी कविता की नयी चुनौतियाँ (बाज़ार और उपभोक्तावाद, सत्ता-साम्प्रदायिकता-अभिव्यक्ति का संकट, विस्थापन और पर्यावरण-क्षरण, स्त्री तथा आदिवासी स्वर, और तकनीक-जनित अकेलापन) मोहभंग और सत्ता-विरोध की पूर्ववर्ती परम्परा का ही नया विस्तार हैं। दूसरा, ये कविताएँ चुनौतियों को नारे के रूप में नहीं, स्मृति, बिम्ब, व्यंग्य और मिथक के पुनर्पाठ जैसे शिल्प-साधनों से व्यक्त करती हैं। तीसरा, स्त्रियों और हाशिये के समुदायों के रचनाकार बनने से कविता का अनुभव-क्षेत्र फैला है और 'कौन बोल रहा है' का प्रश्न काव्य-विमर्श के केन्द्र में आया है। चौथा, कविता के सामने स्वयं उसकी सार्वजनिकता और पाठक-वर्ग की चुनौती है, जिसका उत्तर लोकप्रियता की होड़ में नहीं, अनुभव की प्रामाणिकता और भाषा की गरिमा में खोजा जाना चाहिए। इस अध्ययन की सीमा यह है कि वह प्रतिनिधि कवियों और संग्रहों तक सीमित है; आगे युवा कवियों, लोकभाषाओं की कविता, डिजिटल कविता और अन्य भारतीय भाषाओं की कविता के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

(क) प्राथमिक स्रोत (काव्य-संग्रह)

1. मुक्तिबोध, गजानन माधव (1964). चाँद का मुँह टेढ़ा है।
2. धूमिल (1972). संसद से सड़क तक।
3. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना. खूँटियों पर टँगे लोग (साहित्य अकादमी पुरस्कार, 1983)।
4. रघुवीर सहाय (1982). लोग भूल गये हैं (साहित्य अकादमी पुरस्कार, 1984)।
5. केदारनाथ सिंह. अकाल में सारस (साहित्य अकादमी पुरस्कार, 1989)।
6. कुँवर नारायण (2008). वाजश्रवा के बहाने; कविता 'अयोध्या, 1992'।
7. अरुण कमल. नये इलाके में (साहित्य अकादमी पुरस्कार, 1998)।
8. मंगलेश डबराल. पहाड़ पर लालटेन; हम जो देखते हैं (साहित्य अकादमी पुरस्कार, 2000)।
9. वीरेन डंगवाल. दुश्चक्र में स्रष्टा (साहित्य अकादमी पुरस्कार, 2004)।
10. अनामिका (2014). टोकरी में दिगन्त: थेरीगाथा (साहित्य अकादमी पुरस्कार, 2020)।
11. निर्मला पुतुल. नगाड़े की तरह बजते शब्द. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; अपने घर की तलाश में. नई दिल्ली: रमणिका फाउंडेशन।

12. जसिंता केरकेट्टा (2022). ईश्वर और बाज़ार. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; अंगोर; जड़ों की ज़मीन।
13. विनोद कुमार शुक्ल (1992). सब कुछ होना बचा रहेगा।

(ख) सहायक स्रोत

1. नामवर सिंह (1968). कविता के नये प्रतिमान।
2. साहित्य अकादमी, नई दिल्ली. हिन्दी भाषा के साहित्य अकादमी पुरस्कार-विजेताओं की सूची।